मातृ-स्नेह

(१)

लाला नानकचन्द निर्धन मनुष्य थे, और ब्याहे हुए। तीन पुत्र थे; एक कन्या, प्रायः उदास रहते और प्रारब्ध को कोसा करते। पचास रुपये मासिक वेतन था, साठ रुपये का ख़र्च। अवकाश के समय दो तीन आढतियों के पत्र भी लिखा करते थे। वहाँ से पन्द्रह-बीस की आय और हो जाती थी, परन्तु इतना कुछ कर चुकने पर भी हाथ तङ्ग ही रहता था। नानकचन्द अत्यन्त आतुर रहते। उनके मुख पर कभी किसी ने हँसी की रेखा नहीं देखी। उनको न खाने का शौक था और न पीने का। दफ्तर के लोग कहते, कैसे सूम हो, ज़रा कपड़े तो उजले रखा करो। नानकचन्द इसका उत्तर नैराश्य-दृष्टि से देते, और टल जाते। एक बजे के लगभग दफ़्तर के हाते में ख़्वाँचेवाला आता, तो बाबू लोग काम-काज छोड़ कर उसके गिर्द घेरा डाल लेते। कोई दो आने खा जाता, कोई चार आने, परन्तु नानकचन्द को किसी ने कभी पैसे की वस्तु खाते नहीं देखा। दफ़्तर के लोगों का ख़याल था कि यह इसकी प्रकृति है, पेट काट-काट कर बचाता है। वह इन्हें सूम समझते थे। परन्तु सचाई इससे कोसों दूर थी। नानकचन्द सूम न थे। दूसरे बाबुओं की नाईं वे भी चाहते थे कि वस्त्र उजले रखें; परन्तु पास पैसा न था। मिठाई का ख़्वाँचा देखकर उनका मन भी बालक की तरह अधीर हो जाता था, परन्तु घर के बढ़े हुए ख़र्च

गला पकड़ लेते थे। वे नेत्र उठाते और नैराश्य-भाव से फिर दृष्टि नीची करके काम में लीन हो जाते। कर्त्तव्य ठण्ढी साँस भरता, परन्तु अचल धैर्य्य आकांक्षा को पाँवों तले रौंद डालता।

(२)

प्रातःकाल था। नानकचन्द आढ़तियों के पत्र लिख रहे थे, और उनके पुत्र ऊधम मचा रहे थे। बसन्त कहता था अनन्त मेरा घोड़ा ले गया है। अनन्त रोता था बसन्त मुझे रस्सी नहीं देता। इन दोनों को झगड़ते देखा तो बड़ा लड़का जसवन्त उचक कर रस्सी और लकड़ी का घोड़ा दोनों वस्तुएँ ले गया। अनन्त और बसन्त दोनों चीख़-चीख़ कर रोने लगे।

नानकचन्द ने सीता से कहा, "इनको यहाँ से हटाती हो कि नहीं। मुझे अभी बहुत-सा काम करना है। महीने के अन्त में फिर कहोगी, ख़र्च नहीं है।"

सीता ने रोटी तवे पर डालते हुए उत्तर दिया, "तो क्या अब काम करते ही रहोगे? धूप की ओर तो देखो, नौ कब के बज चुके। दफ़्तर का समय हो गया है।"

शब्द साधारण थे, परन्तु नानकचन्द की क्रोधाग्नि पर तेल का काम दे गये। उन्होंने जोश में आकर कहा, "सहस्रों मनुष्य आये दिन प्लेग से मरते रहते हैं, इनके प्लेग भी नहीं होता, कि मेरे प्राण दुःख से छूट जायँ।"

माँ सब कुछ सह सकती है, पर यह नहीं सह सकती। सीता गर्म होकर बोली, "हाँ इनको प्लेग करो, तुम्हारे घर में जन्म लेकर इन्होंने थोड़े सुख भोगे हैं। अब बच्चे हैं, मुँह से कहकर कैसे बैठ रहें। इनको देखकर तो तुम्हें ज़हर-सा चढ जाता है।"

नानकचन्द ने सीता को इस प्रकार घूर कर देखा मानो खा ही जायँगे, और उत्तर दिया, "हाँ ज़हर-सा चढ़ जाता है। तुमको कमाना नहीं पड़ता। घर में बैठी बातें बनाना जानती हो, जितना काम मुझे करना पड़ता है, उतना मेरे दफ़्तर भर में कोई नहीं करता।"

"तो ब्याह न करते। इसमें इन बच्चों का क्या दोष है?"

"दोष है। मैं चिल्लाता रहता हूँ, कि चुपके होकर बैठो, मुझे काम करने दो। परन्तु यह मेरी बात पर कान तक नहीं धरते।"

सीता ने धीरे से कहा, "फिर बच्चे ही तो हैं, भूल कर बैठते हैं।"

"मैं इनको मार-मार कर इनकी हड्डियाँ तोड़ दूँगा।"

"चलो रोटी खा लो, दफ़्तर का समय हो गया है।"

नानकचन्द रोटी खाने बैठे, परन्तु दो ही कौर मुख में डाले होंगे कि पड़ोसी के क्लाक ने दस बजा दिये। नानकचन्द ने हाथ खैंच लिया और थाली हटा दी। सीता ने प्यार से कहा, "अब जल्दी-जल्दी खा लो, आज ज़रा देर हो गई तो क्या हुआ। कह देना।"

यह वाक्य कैसा हृदय-वेधक था, नैराश्य की सजीव मूर्त्ति, नानकचन्द की आँखें सजल हो गईं। वह रुद्ध कण्ठ से बोले, "क्या करूँ, सुपरिन्टैंडैन्ट बड़ा कठोर आदमी है। छोटी-छोटी बात पर (Explanation) ऐक्सप्लेनेशन माँगता है। अब जाने ही दो, आकर खा लूँगा।"

सीता कुछ कहने को थी, कि नानकचन्द की दृष्टि अनन्त पर पड़ गई। प्रातःकाल उन्होंने जितने पत्र लिखे थे, उसने सबके सब फाड़ डाले थे, और उनका पुलन्दा बना कर खेल रहा था। गया हुआ क्रोध वापस आ गया। अब नानकचन्द न सह सके। उन्होंने अनन्त को गले से पकड़ कर कहा, "क्यों सूअर, यह क्या किया?"

इस समय उनके शब्दों में किसी सिंह की-सी गर्जना थी।

अनन्त ने पहले तो इस प्रकार पिता की ओर देखा, मानो उसने कोई अपराध नहीं किया, परन्तु पिता की लाल आँखें देखकर सहम गया, और धीरे से बोला, "अब न करूँगा।"

यही शब्द थे, जिनको सुनकर नानकचन्द मुग्ध हो जाया करते थे। यही तोतली वाणी थी, जिससे उन पर अनिर्वचनीय आनन्द छा जाता था। परन्तु इस समय नानकचन्द पर कोई प्रभाव न पड़ा। क्रोध ने मिठास में विष मिला दिया।

सीता ने आगे बढ़ कर अनन्त से कहा, "बेटा! बाबूजी के आगे हाथ जोड़ दे। फिर काग़ज़ न छेड़ना"। अनन्त ने अपने भोले भाले हाथ जोड़ कर अपराधी की नाईं नेत्रों में आँसू भर कर कहा, "अब न छेलूँगा"।

परन्तु क्रोध के दरबार में विनती की कोई पूछ नहीं होती। नानकचन्द ने

बच्चे को मार-मार कर अधमुआ कर दिया। सीता ने उसे छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु नानकचन्द ने सुना-अनसुना कर दिया, और जब तक हाथ थक न गये बराबर मारते गये। इस मार से उनका क्रोध उतरवाया, परन्तु फटे हुए काग़ज़ों को कौन जोड़ सकता था?

(३)

मगर घर से बाहर जाकर उनको अपने किये पर पछतावा हुआ। जब तक क्रोध था तब तक सोच न सकते थे, मगर दफ्तर जाकर चैन से बैठे तो उनको अपनी भूल का अनुभव हुआ। सोचा मैंने यांहो मारा। बच्चे को क्या पता कि उसने क्या कर दिया। वे काग़ज़ मेरे लिये बहुमूल्य थे, लेकिन बच्चे के लिए वे और रद्दी एक समान हैं। भूल उसकी नहीं मेरी थी। मुझे चाहिये था कि उन्हें सँभाल कर रखता न कि इस तरह चारपाई पर फेंक देता। मैंने ठीक नहीं किया। वह उस समय कैसी दीन दृष्टि से मेरी ओर देखता था जैसे कोई दया के लिए प्रार्थना करता हो, परन्तु मैंने ध्यान न दिया। उसकी वाणी कैसी मधुर है, जैसे श्यामा का सङ्गीत। साँझ को घर जाता हूँ तो किस प्यार से चिमट जाता है, दफ्तर का समय होता है तो बूट लाकर आगे रख देता है। उसका बाल-हृदय क्या कहता होगा। अबोध बालक क्या जानता है कि ये काग़ज़ काम के हैं या बेकार। परन्तु क्रोध ने आँखें बन्द कर दीं। उन्होंने चाहा उड़कर घर पहुँच जायँ, परन्तु दफ्तर के नियम ने पाँव जकड़ लिये, चुपचाप काम करते रहे। उस दिन उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानों काल स्थिर हो गया है और घड़ी की सुइयाँ जम गई हैं। वे बारम्बार घड़ी की ओर देखते थे और क्रोध से होंठ काट-काट कर रह जाते थे। आख़िर घड़ी ने चार बजाये, नानकचन्द लम्बे-लम्बे डग मारते हुए घर की ओर चले। बाज़ार में पहुँचे, तो सोचा अनन्त को मारा था, रूठ गया होगा। मुझे देखेगा तो छिप जायगा। पुकारूँगा तो उत्तर न देगा। मिठाई का दोना ले चलूँ। यह मिठाई उसके घावों पर मरहम का काम दे जायगी। यह सोच कर नानकचन्द ने चार आने की मिठाई ख़रीदी और फूले-फूले घर को चले। परन्तु वहाँ पहुँचे तो घर की अवस्था ही बदली हुई देखी। एक ओर स्त्री बैठी रो रही थी; दूसरी ओर

कन्या सिसक रही थी। जसवन्त ने पिता को देखा तो वह भी रोने लगा। वसन्त धूल में पड़ा सो रहा था, उसकी ओर किसी का ध्यान न था।

(४)

नानकचन्द के कलेजे में जैसे किसी ने भाला चुभो दिया। उनका सिर चकराने लगा और पाँव तले की भूमि खिसकने लगी। उन्होंने मिठाई का दोना एक चारपाई पर रखा और गृहिणी के पास जाकर बोले, "क्यों क्या बात है ?"

सीता इस समय तक चुप थी, परन्तु पति की बात सुनकर अकुला उठी। उसने छेड़ी हुई नागिन के समान सिर उठाया और कहा, "मिठाई के दोने बाटो, तुम्हारी सदिच्छा पूरी हो गई। सवेरे बच्चे को प्लेग करने के लिए शुभ-प्रार्थनाएँ कर रहे थे, भगवान ने तुम्हारी सुन ली।"

नानकचन्द का कलेजा धड़कने लगा। उनके हृदय में सहस्रों शङ्काएँ उठीं, घबराकर बोले, "क्यों कुशल तो है। अनन्त कहाँ है ?"

"अनन्त तुम्हारा कौन है ? जो उसके लिए पूछते हो। सवेरे मार मारकर बेचारे के प्राण ले लिये थे।"

"परन्तु अब कहाँ है" ?

क्रोध जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है, तो चुप्पी साध लेता है। सीता ने कोई उत्तर न दिया।

नानकचन्द ने हार कर कन्या। पूछा, "सावित्री ! अनन्त कहाँ है ?"

सावित्री ने सिसकियाँ भरते हुए उत्तर दिया, "पता नहीं।"

"क्या घर में नहीं है ?"

"नहीं।"

"तो कहाँ है ?"

"आपके दफ्तर जाने के बाद बाहर निकला था, फिर पता नहीं चला। बहुतेरा ढूँढा, पर वह नहीं मिला।"

नानकचन्द अपनी भूल का ऐसा भयानक परिणाम देख कर तलमला उठे और जल्दी से बाहर निकल गये। वे कभी सोचते, किसी ताँगे के नीचे न आ गया हो, कभी कल्पना होती, वर्षा के दिन हैं, नदी में बाढ़ आई हुई है, उसमें

न गिर गया हो। जो कुछ दुख-सुख हो गया तो इसका उत्तरदायित्व एकमात्र मुझी पर होगा। सीता को कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। यह सोचते-सोचते उनकी तेज-हीन आँखों में शोक-अश्रु आ गये। रोते हुए बाहर निकले और बच्चे को ढूँढ़ने लगे, परन्तु उसका पता न मिला। ढिंढोरा पिटवाया, पुलिस में सूचना दी और हताश होकर घर लौटे। सहसा एक विशाल भवन के सामने से गुज़रते हुए उनके कान में आवाज़ आई, "बाबूजी।"

निराशा ने आशा का रूप देखा। नानकचन्द के पाँव रुक गये। उन्होंने चारों ओर देखा। रायबहादुर मुबारक राय के घर के आँगन में दृष्टि दौड़ाई। इतने में फिर आवाज़ आई, "बाबूजी।"

नानकचन्द का रोम-रोम हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा। वही स्वर था, वही बोल, वही माधुर्य्य, वही भोलापन। नानकचन्द दौड़कर आँगन में गये, और दूसरे क्षण में उनका पुत्र उनकी टाँगों से चिमटा हुआ था।

परन्तु अभी वे अपने खोये हुए बालक के मिलन का सुख भी न अनुभव कर पाये थे कि रायबहादुर मुबारक राय उनके सामने आ खड़े हुए और बोले, "यह आपका बालक है क्या?"

नानकचन्द ने बालक के माथेपर बिखरे हुए बाल हटाते हुए उत्तर दिया, "जी हाँ।"

"आप पिता नहीं पिशाच है। ये जो इस बच्चे के शरीर पर मार के चिन्ह हैं, यह आपकी करतूत है। आपको कुछ लज्जा आनी चाहिये!"

नानकचन्द पर घड़ों पानी पड़ गया, लज्जा के मारे सिर झुक गया। धीरे-धीरे बोले, "यह मेरी मूर्खता थी, भविष्य में ऐसी भूल न होगी।"

"आपके कितने लड़के हैं?"

"तीन।"

"लड़कियाँ?"

"एक।"

रायबहादुर ने प्यासे नेत्रों से नानकचन्द की ओर देखा, यह कैसा भाग्य-शाली है। निर्धन है, परन्तु आँगन बच्चों की हँसी से गूँजता रहता है। मेरे पास धन की कमी नहीं, परन्तु घर में अँधेरा है।' उनके नेत्रों में आँसू छलकने लगे।

नानकचन्द ने प्रातःकाल की घटना सविस्तार कह सुनाई। रायबहादुर को बहुत दुःख हुआ, बोले, "इसमें आपका नहीं, दारिद्र्य का दोष है।"

(५)

एकाएक किसी मनोहर विचार ने उनके हृदय में चुटकी ली, मुखमण्डल पर चमक-सी आ गई। मुस्कराकर बोले, "आपको क्या तनख़्वाह मिलती है?"

नानकचन्द ने सिर झुका कर उत्तर दिया, "पचास रुपये।"

"तो निर्वाह कैसे होता होगा?"

'बड़ी तङ्गी से होता है। भगवान् ने जो जीव भेजे हैं, उनके खाने का भी प्रबन्ध हो ही जाता है।"

राय मुबारक राय ने सोचा, "यही अवसर है जब नानकचन्द को वश में किया जा सकता है, मुस्कराकर बोले, "मैं एक बात कहूँ।"

नानकचन्द का दिल धड़कने लगा। उन्होंने आश्चर्य से कहा, "कहिए।"

"आपके सन्तान है, परन्तु रुपया नहीं। मेरे पास रुपया है, परन्तु पुत्र को तरसता हूँ।"

"जी।"

"यदि हम दोनों मिल जाएँ, तो हम दोनों के क्लेश दूर हो सकते हैं।"

नानकचन्द बैठे थे खड़े हो गये, और बोले, "मैं आपकी बात नहीं समझा।"

रायबहादुर कुछ क्षण चुप रहे, मानों अपनी बात के प्रभाव को दुगना करना चाहते थे, और फिर बोले, "बात स्पष्ट है। आप अपना यह लड़का मुझे दे दीजिए, मैं इसे अपना पोष्य-पुत्र बनाऊँगा। मेरे पश्चात् मेरी सम्पत्ति का यही अधिकारी होगा। और इसके बदले में मैं आपको एक मकान दे दूँगा और सौ रुपया मासिक। यदि आप इस बात को स्वीकार कर लें तो मेरे यहाँ मानों बेटा हो गया, और आपका धन मिल गया।"

नानकचन्द को ऐसा जान पड़ा मानों कोई स्वर्गोपम स्वप्न देख रहे हों। उन्हें विश्वास न हुआ कि राय मुबारक राय सचमुच यह बात मन से कह रहे हैं। हिचकिचाते हुए बोले, "क्या आप यह बात हार्दिक-भाव से मेरे सामने रख रहे हैं?'

मुबारक राय के नेत्रों में आनन्द छलकने लगा; समझे मैदान मार लिया। बोले, "हाँ जो कह रहे हैं, मन से कह रहे हैं।"

"हम बालक से जब चाहें मिल सकेंगे ?"

"जिस समय चाहो; मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।"

नानकचन्द सोचने लगे। एक ओर पुत्र-प्रेम था, दूसरी ओर संसार-सुख। हृदय एकाएक निश्चय न कर सका कि क्या करना चाहिए। अन्त में खड़े होकर बोले, "मैं अपनी गृहिणी से परामर्श करके आपको कल उत्तर दूँगा।"

यह बात सीता ने सुनी तो मानों आकाश से गिर पड़ी। उसने अनन्त को छाती से लगाया और बोली, "मुझे निर्धनता स्वीकार है, परन्तु बच्चा न बेचूँगी।"

नानकचन्द ने उपेक्षा भाव से कहा, "मूर्खा हुई हो। परमात्मा ने तीन पुत्र दिये हैं, एक कन्या। यदि इनमें से एक पुत्र दे दिया, तो क्या अन्धेर हो जायगा। और फिर कोई दूर नहीं; चार मिनट के रास्ते पर रहेगा। जब जी चाहे देख आना, कोई रोक-टोक नहीं।"

सीता ने उत्तर दिया, "यह सब कुछ ठीक है, परन्तु मैं अपना बच्चा न बेचूँगी।"

नानकचन्द ने जोश से कहा, "मेरी बात भी न मानोगी ?"

"और सब मानूँगी, पर यह न मानूँगी। मैं माँ हूँ, डायन नहीं हूँ।"

"इसका मूल्य मेरा क्रोध होगा।"

"मुझे वह भी स्वीकार है।"

नानकचन्द को आशा न थी कि बात यहाँ तक बढ़ जायगी; कड़क कर बोले, "यह बात है तो फिर मैं भी जो मेरे जी में आयेगा करूँगा। देखता हूँ तुम मेरा हाथ कैसे पकड़ लेती हो ?"

सीता ने यह सुना तो मुर्छित होकर गिर पड़ी, परन्तु नानकचन्द ने परवा न की, और रायबहादुर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

(६)

अब नानकचन्द वे पहले नानकचन्द न थे। रायबहादुर की उदारता ने उन्हें मालामाल कर दिया। अब वे अच्छे घर में रहते थे, स्वच्छ वस्त्र पहनते

थे, साँझ-बेसरे गाड़ी में बैठकर हवा खाने जाते थे, उस समय उनकी आँखों में अभिमान खेलता था। परन्तु लोग उनसे प्रसन्न न थे। कोई कहता, भिखारी राजसिंहासन पर चढ़ बैठा है, परमात्मा रक्षा करे। कोई कहता जाति का नीच है, एकाएक रुपया मिल गया, आपे से बाहर हो रहा है, भूमि पर पाँव नहीं रखता। कोई कहता, सुना था लक्ष्मी अन्धी होती है, अब प्रत्यक्ष देख लिया। कोई कहता, बेटे के बदले धन मिला है, देखें परिणाम क्या होता है। अर्थात् जो जिसके जी में आता वही कह देता और ये बातें पीठ पर नहीं कभी-कभी सामने भी हो जाती थीं। ये वाक् न थे, वाक्-बाण थे। नानकचन्द आग हो जाते। वे कहते, मैं किसी को कष्ट नहीं देता, किसी का दिल नहीं दुखाता, फिर यह मुझसे ईर्ष्या क्यों करते हैं? रायबहादुर मुबारक राय मुझे रुपया देते हैं, मैं लेता हूँ, इससे लोगों के हृदय में शूल क्यों उठता है। मैंने कोई चोरी नहीं की, किसी पर डाका नहीं डाला, कोई पाप नहीं किया, फिर भी लोग मुझसे जलते हैं, इसका कारण क्या? मुझे देख कर उनके तन में आग लग जाती है, इसका उपाय क्या हो सकता है? मगर प्रतिदिन सोचने पर भी उनको कोई कारण समझ में नहीं आया, यहाँ तक कि उन्होंने इस बात पर विचार करना छोड़ दिया।

परन्तु ऐसा करने पर भी वह अनुभव करते थे कि जिस बात की आकांक्षा थी, वह पूरी नहीं हुई। उनकी स्त्री दिन-रात उदास पड़ी रहती थी। उठती तो सिर चकराता, बैठती तो आप-से-आप रोने लगती, सोती तो चौंक-चौंक उठती। उसे न बच्चों का ध्यान था न घर के काम-काज का। यहाँ तक कि उसे खाने पीने की भी सुध न थी। नौकर मनमाने कार्य्य करने लगे। प्रायः जब अवकाश होता तो कहते, ग़रीब घराने की स्त्री है, नौकरों से काम लेना क्या जाने। सीता यह सब कुछ देखती, परन्तु चुप रहती। उस पर जैसे कोई जादू हो गया था। नानकचन्द का जीवन दुःखमय हो गया। प्रायः सोचते, बड़ी मूर्खता हुई, लक्ष्मी की ओर फूलों की शय्या समझ कर आये थे, परन्तु इसमें ऐसे तीक्ष्ण कंटक होते हैं, यह ज्ञान न था। उन्होंने पहले पहल तो विरोध का सामना किया। परन्तु अधिक काल तक न ठहर सके; जिस प्रकार कच्चा बाँध बाढ़ के जल को नहीं सँभाल सकता। बाहर निकलते तो लोगों की

नोक झोंक सुनते, घर जाते तो स्त्री की उद्विग्नता और बच्चों की ओर से उपेक्षा देखते। नानकचन्द घबरा गये। शुक्ल पक्ष में इतना अन्धकार देखकर उनके कलेजे में बाण सा लगा। उनका यह विचार कि धन में सुख है, सच्चा न निकला। हाँ, यह सिद्ध हो गया कि दुर्बल हृदय मनुष्य की प्रसन्नता दूसरों के वश में है।

नानकचन्द के नये मकान के निकट ही एक छोटी सी पुष्प-वाटिका थी, जिसे उन्होंने अपनी इच्छानुसार सजाया था। सायङ्काल सीता को वहाँ ले जाते और उसको प्रसन्न करने की चेष्टा करते। परन्तु सीता की चिन्ता पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। इससे पहले वह हँसमुख और चञ्चल थी, परन्तु अब उसके मुख पर कभी मुस्कराहट न झलकती थी। नानकचन्द जानते थे कि इस काया-पलट का कारण क्या है, परन्तु उसे ज़बान पर लाने का साहस न होता था। सीता का दुखित हृदय इसे भलीभाँति समझता था, परन्तु उसे प्रकट करना वह उचित न समझती थी।

(७)

इस हृदय-वेदना का परिणाम यह हुआ, कि सीता का शरीर दुर्बल हो गया और उसे हल्का-हल्का ज्वर रहने लगा, खाट से उठना कठिन हो गया। राय मुबारक राय को यह समाचार मिला तो उन्हें बहुत चिन्ता हुई। उन्होंने एक योग्य डाक्टर भेजा और साथ ही नर्सों का प्रबन्ध कर दिया, जो दिन रात उसके सिरहाने बैठी रहती थीं। परन्तु इतना करने पर भी सीता का रोग कम न हुआ। वह दिन-पर-दिन क्षीण होती गई, यहाँ तक कि नानकचन्द ने एक दिन डाक्टर से पूछा, "औषधि असर क्यों नहीं करती?"

डाक्टर ने विचित्र-सी दृष्टि से नानकचन्द की ओर देखा, और उत्तर दिया, "क्या कहूँ, जहाँ तक हो सकता है कर रहा हूँ।"

"फिर चङ्गी क्यों नहीं होती?"

"इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।"

नानकचन्द को चिन्ता हुई, उद्विग्न-से होकर पूछने लगे, "कहीं रोग असाध्य तो नहीं हो रहा। देखिए मुझे धोखे में न रखिए। जो बात हो साफ़-साफ़ कह दीजिए।"

डाक्टर ने खाँस कर उत्तर दिया, "इसका बचना अब कठिन है।"

नानकचन्द के मस्तक पर पसीना आ गया। रुक-रुक कर बोले, यदि किसी पहाड़ पर ले जाऊँ तो कैसा रहे?"

"सर्वथा निरर्थक।"

"फिर कोई उपाय भी है या नहीं?"

"एक उपाय है। उससे इनका बचना सम्भव है। और कोई उपाय नहीं!"

"क्या?"

"आप वैसा करेंगे नहीं।"

नानकचन्द समझ गये, डाक्टर साहब क्या उपाय बतायेंगे। उनके कलेजे में घूँसा लगा। तथापि सँभल कर बोले, "मैं करूँगा?"

"यह बच्चे के वियोग में मर रही है। उसकी वापसी इसके लिए संजीवनी बूटी हो जायगी। मैं मानता हूँ इसके लिए आपको भारी बलिदान करना होगा। परन्तु स्त्री सन्तान के सामने संसार के सर्वोत्तम पदार्थों को भी तुच्छ समझती है। क्योंकि वह उसके लिए अपनी देह को चीरती है, उसे अपना दुग्ध पिलाती है। इसमें सन्देह नहीं अब आपको सुख प्राप्त है, परन्तु इनका हृदय चौबीस घंटे अपने बच्चे के लिए रोता रहता है। जहाँ यह अग्नि सुलग रही हो वहाँ औषधि क्या कर सकती है? इसलिए यदि आपको अपनी धर्म्म-पत्नी से प्रेम है, और इन्हें बचाने की इच्छा है, तो इसका बच्चा इन्हें वापस ला दें, इनके रोग की यह अमोघ औषधि है।"

यह ख़याल नानकचन्द के मन में इससे पहले कई बार आ चुके थे। परन्तु दूसरे के मुख से सुन कर उनके पैर भूमि में गड़ गये। उन्होंने नीचे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, "मैं स्वयं पछता रहा हूँ। कैसी भूल कर बैठा। आपके शब्दों ने मेरा विचार और भी दृढ़ कर दिया है। मैं इस सौदे को तोड़ दूँगा।"

"तो अभी तक लिखा पढ़ी नहीं हुई?"

"जी नहीं।"

"ज़रा हौसले के साथ बातचीत करना। उनके रोब में न आ जाना।"

"इसकी चिन्ता न करें, मैं सब कुछ ठीक कर लूँगा।"

नानकचन्द भले प्रकार जानते थे कि सीता के रोग का कारण अनन्त का

वियोग है, परन्तु उनको इस बात की आशङ्का न थी कि यह रोग अन्त को घातक सिद्ध होगा और इसी कारण वे इस समय तक सँभले हुए थे। परन्तु डाक्टर की सम्मति सुनकर उनका साहस टूट गया, और उन्होंने निश्चय कर लिया कि जितनी जल्दी हो सके बालक वापस ले आयें। इस अभिप्राय से उन्होंने अपना नौकर रायबहादुर मुबारक राय के घर पर भेज कर अनन्त का कुशल-क्षेम पूछा। उत्तर आया, अनन्त भी ज्वर से बेसुध पड़ा है, और उसकी चिकित्सा सिविल सर्जन कर रहा है।

नानकचन्द के हृदय पर दूसरा आघात लगा। जल्दी से सीता के पास पहुँचे। वह नेत्र मूँदे पड़ी थी, नानकचन्द अधीर हो उठे। यही शरीर था, जिसे देख कर हृदय-कुसुम प्रफुल्लित हो जाता था; आज इस पर मुर्दनी छाई हुई थी। कभी वे दिन थे जब सीता सबेरे से साँझ तक काम-काज में लगी रहती थी और थकती न थी। आज उसके हाथों में इतनी भी शक्ति न थी कि मुँह से मक्खियाँ तक उड़ा सके। नानकचन्द के पाँव डगमगाने लगे, नेत्रों में जल आ गया; सीता की चारपाई पर बैठ कर रुद्ध कंठ से बोले, "सीता!"

सीता ने आँखें खोल दीं। जब से नानकचन्द ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका पुत्र रायबहादुर मुबारक राय को दे दिया था, उस दिन से उसने नानकचन्द से बातचीत करना बन्द कर दिया था। परन्तु इस समय उनका भर्राया हुआ स्वर सुन कर उसके नेत्रों से भी अश्रु बहने लगे। इन आँसुओं में उसका क्रोध बह गया। उसने धीरे से उत्तर दिया, "क्यों? रोने से क्या होगा, शान्ति करो।"

नानकचन्द को बात करने का साहस हुआ। काँपते हुए बोले, "मैं तुम्हारा अपराधी हूँ।"

सीता ने निश्चय कर लिया था कि मर जाऊँगी, पति से लड़का वापस लाने के लिए न कहूँगी। परन्तु पश्चात्ताप के दो शब्द सुनते ही क्रोध ने सिर झुका दिया। रोती हुई बोली, "मेरा अनन्त मँगवा दो, नहीं मैं राज़ी न हूँगी।"

नानकचन्द ने सीता की ओर सलज्ज नेत्रों से देख कर उत्तर दिया, "मँगवा दूँगा।"

"कब तक?"

"कुछ बीमार है, चङ्गा हो लेने दो। इतने में तुम भी ठीक हो जाओगी।"

सीता समझ न सकी कि नानकचन्द का प्रयोजन मँगवाने से क्या है? मिलाने के लिए अथवा सदा के लिए। परन्तु स्पष्टतया पूछने का साहस भी न हुआ। सोच कर बोली, "यह घर छोड़ना होगा।"

नानकचन्द ने धीरता से उत्तर दिया, 'छोड़ देंगे।"

"रुपये पैसे का फिर कष्ट होगा।"

"सह लेंगे।"

सीता का संकुचित मन आनन्द से खिल गया। मुस्कुरा कर बोली, "परन्तु आपको बहुत कष्ट होगा।"

नानकचन्द ने जोश से उत्तर दिया, "मैं दिन-रात के चौबीस घंटे काम करूँगा, सूखी रोटी खाना स्वीकार करूँगा परन्तु बच्चे को सुख-सम्पत्ति के लिए नहीं बेचूँगा।"

यह शब्द सुनकर सीता का हृदय आनन्द-सागर में लीन हो गया।

(८)

इसके दूसरे दिन दस बजे सीता ने नौकर को बुलाया और पूछा, "बाबूजी हैं?"

नौकर ने उत्तर दिया, "नहीं, उनकी छुट्टी पूरी हो गई है, दफ्तर गये हैं।"

"तो ताँगा ले आओ।"

"कहाँ जाना होगा?"

"रायबहादुर मुबारक राय के मकान तक जाऊँगी।"

नर्स ने यह सुना तो दंग रह गई और बोली, "यह नहीं होगा। आपका शरीर बहुत दुर्बल है।"

सीता ने उसकी ओर देखकर कहा, "तुम्हारी अपेक्षा अपना जीवन मुझे अधिक प्यारा है।"

"परन्तु डाक्टर ने मना किया है।"

"उसने मेरा रोग ही नहीं पहचाना, इलाज क्या करेगा। ताँगा ले आओ, मैं अपना बच्चा देखने जाऊँगी।"

नर्स ने फिर कहा कि इस अवस्था में जाना उचित नहीं। परन्तु सीता ने

कुछ ध्यान न दिया और ताँगे में बैठ गई। उसका सिर चकराता था। शरीर काँपता था। परन्तु बच्चे का प्यार उसे बल और साहस दे रहा था। रायबहादुर मुबारक राय के घर पहुँचकर वह उड़ती हुई उनके हाल कमरे में पहुँच गई। वहाँ उसका बच्चा एक बहुत बढ़िया पलङ्ग पर लेटा था और उसके सिरहाने बिजली का एक पंखा चल रहा था।

सीता मातृ-स्नेह की व्याकुलता से आगे बढ़ी, परन्तु एकाएक उसके पाँव रुक गये। विचार आया, यह सुख, यह आनन्द, यह ऐश्वर्य मेरे यहाँ कहाँ प्राप्त हो सकता है? इसकी ख़ातिर जिस प्रकार रुपया पानी का नाईं यहाँ ख़र्च किया जाता है, वह मैं कैसे कर सकता हूँ? तो फिर इसे स्वर्ग से खींचकर नरक में ढकेलना क्या मातृ-स्नेह है? क्या मातृ-स्नेह यही है कि अपनी छाती ठंडी करने के लिए इसे टुकड़े टुकड़े के लिए मोहताज बना दूँ? क्या मातृ स्नेह यही है कि इसके सुवर्ण-भविष्य को मिट्टी में मिला दूँ? भाग्य से गद्दी पर जा चढ़ा है। क्या अब इसे मातृ-स्नेह फिर दरिद्रता के गढ़े में गिरा देगा?

यह सो ते-सोचते सीता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके नेत्रों से एक परदा-सा हट गया है। उसने हृदय पर पत्थर रक्खा और उलटे पाँवों वापस मुड़ने को थी कि अनन्त ने करवट बदली और सीता को देखकर कहा—"बी बी जी।"

सीता का धैर्य्य छूट गया। वह रोती हुई मुड़ी और अपने तीन मास के बिछुड़े हुए पुत्र से लिपट गई।

कुछ काल तक मौन का साम्राज्य रहा। ऐसा जान पड़ता था मानों किसी ने माँ-बेटे दोनों पर जादू कर दिया है। एकाएक सीता ने अनन्त का मुँह चूमकर पूछा, "क्यों बेटा, यहाँ रहेगा?"

अनन्त ने नेत्रों में आँसू भरकर उत्तर दिया, "न, मैं घल तलूँगा।"

"यहाँ मिठाई मिलती है?"

"हाँ, मिलती है।"

"तो वहाँ मिठाई न मिलेगी।"

"मिलेगी।"

"नहीं। वहाँ मिठाई नहीं है।"

"थोली है ?"

"थोड़ी भी नहीं है।"

"अच्छा।"

"और अच्छे कपड़े भी नहीं।"

"घलवाले कपड़े गन्दे हैं ?"

"हाँ बेटा ! घरवाले कपड़े गन्दे हैं ? अब बता यहाँ रहेगा ?"

अनन्त ने कुछ देर सोचा और फिर खड़ा होकर बोला, "न बीबी जी ! घल तलूँगा।"

"यहाँ न रहेगा ?"

"न।"

"देख तो कैसा अच्छा घर है, कैसा सुन्दर पलँग है। हमारे घर में यह चीज़ें कहाँ ?"

परन्तु इन बातों का अनन्त के हृदय पर कोई प्रभाव न हुआ। धीर-भाव से बोला, "न, मैं घल तलूँगा।"

"वहाँ क्या है ?"

"फिल तू भी न दा।"

"मैं न जाऊँ तो तू यहाँ रहेगा ?"

"हाँ, लहूँगा ?"

"मैं चली जाऊँ तो....."

"मैं भी तलूँगा।"

सीता के रोम-रोम में हर्ष की लहर दौड़ गई। वही बच्चे से प्रेम करती है, यह बात न थी। बच्चा भी घर के बिछोह में बीमार हो रहा था। इस अवसर पर माँ का हृदय फिर भर आया। वही मातृ-स्नेह जो बच्चे के भविष्य की ख़ातिर अपने सुख की ओर से पराङ्मुख हो गया था, अब बच्चे की इच्छा पर अपना सुख लौटाने को उद्यत हो गया। कैसा आध्यात्मिक दृश्य है ! कैसा पवित्र प्रेम ! जिसकी उपमा संसार भर में नहीं मिलती।

सीता ने अनन्त को छाती से लगाया, और इस प्रकार भागी मानों वह

कोई चोर हो। दूसरे दिन इन दोनों का ज्वर उतर गया।

यह समाचार राय बहादुर मुबारक राय ने सुना तो बहुत छटपटाये, परन्तु अभी लिखा-पढ़ी न होने के कारण कुछ न कर सके। हाँ, नानकचन्द को घर छोड़ना पड़ा और जो रुपये ले चुके थे, उनके लौटाने के लिए सीता के आभूषण बेचने पड़े।

जब आभूषण बिक गये तो नानकचन्द ने हँसी से कहा, "लो, अब तुम्हारे आभूषण तो गये!"

सीता ने अनन्त की ओर इशारा करके उत्तर दिया, "मेरा यह अनमोल आभूषण मेरे पास रहे। परमात्मा से यही माँगती हूँ।"

सीता और नानकचन्द अब भी जीते हैं। उनके दिन कष्ट से कटते हैं, परन्तु वे प्रसन्न रहते हैं। नानकचन्द पहले अपनी कङ्गाली पर कुढ़ते थे, परन्तु अब उनको किसी ने कभी उदास नहीं देखा।